थोड़ी सी जमीं, थोड़ा आसमाँ...

जयश्री रॉय

थोड़ी सी जमीं, थोड़ा आसमाँ...

वीलो के एक अधझड़े पेड़ की छाँव के परे धूप का वह मीठा टुकड़ा बिछा था - गर्म और चमकीला! उसी के घेरे में लकड़ी की वह आत्मीय निमंत्रण से भरी छोटी-सी बेंच!

https://www.hindiadda.com/thodi-si-jameen-thoda-aasaman/

हिमालय उस पर जा कर बैठ गया था - भूख लगी है, सैंडविच खा ले! आज इतवार है और उसका डे ऑफ। एक दुर्लभ दिन, पल-पल कीमती! उसे जीना है इसे धीरे-धीरे - पूरे वजूद से।

सामने ऐल्बे नदी की बर्फीली लहरों में दोपहर का सूरज पिघल कर बह रहा है। सतह पर चाँदी दमक रही है। हांबोर्गा हाफेन! जर्मनी का विश्व प्रसिद्ध बंदरगाह। प्राचीन और विशाल। जब भी फ़ुर्सत मिलती है, हिमालय यहाँ चला आता है। यहाँ का माहौल उसे बहुत पसंद है। कहीं से आश्वस्त करता हुआ कि वह अकेला नहीं है, विस्थापित नहीं है, आश्रित नहीं है। हैमबर्ग एक कॉस्मोपॉलिटन शहर है। यहाँ पूरी दुनिया है। हर देश, मजहब, नस्ल के लोग। हिमालय सिल्बर फॉयल हटा कर धीरे-धीरे अपना सैंडविच कुतरता है। पीछे दाईं तरफ सीढ़ियों से भीड़ रंगीन पानी की तरह उतर रही है। कितने रंग, कितने चेहरे - नदी के किनारे-किनारे क्यारियों में खिले मिले-जुले मौसमी फूलों की तरह। छुट्टी का दिन हो और धूप हो तो यहाँ का शायद ही कोई व्यक्ति घर में बैठता है। सब निकल पड़ते हैं अपनी-अपनी सहूलियत के हिसाब से। आज ऑटोभान में गाड़ियाँ ही गाड़ियाँ। कैराभान भी। किसी की गाड़ी के पीछे साइकल लगी है तो किसी के कैराभान की छत पर बोट। साथ में घोड़े भी अपनी विशेष गाड़ियों में चल रहे हैं। सब कुछ सुंदर और अद्भुत!

दस साल पहले जब वह यहाँ आया था, उसकी आँखें चौंधिया गईं थीं। वह जवाहर टनल की लंबी, अँधेरी सुरंग पार करके कश्मीर से दुनिया के इस छोर में आया था, पॉलिटिकल असायलम की उम्मीद में। अपनी गतिविधियों की वजह से वह लंबे समय से जेहादियों के निशाने पर था। उस पर कई बार जानलेवा हमले हो चुके थे। आखिरी बार जम्मू के जगती इलाके में आतंकवादी हमले के बाद वह किसी तरह हिंदुस्तान से बाहर निकल आया था। वह समझ चुका था, जम्मू में तो क्या, वह देश के किसी भी हिस्से में इन लोगों से बच नहीं सकता। जो देश खुद सुरक्षित नहीं वह अपने नागरिकों की क्या रक्षा करेगा! तो वह जेब में अपने वतन की मुट्ठी भर मिट्टी और चनार के पत्ते लेकर यहाँ चला आया था उजाले की तलाश में। पीछे मैले-साँवले दिनों की अनगिन कतारे थीं और था एक डर - हाँड़-मज्जे में धँसा हुआ। रूह में गहरे तक जज्ब। ये डर उसे - उसकी जाति को विरासत में मिला है - किसी आनुवंशिक रोग की तरह। जिस डर में वह रात-दिन थरथराता है, उसी डर में उसके पूर्वज पीढ़ियों से जीते-मरते रहे हैं। इस डर से मुक्ति नहीं। ये डर उनके डीएनए में है। ये डर है अल्पसंख्यक होने का, अपने आततायियों से संख्या में कम होने का, कमजोर और

असहाय होने का। इस डर से बड़ा कोई डर नहीं जिसमें हर क्षण अस्तित्व का संकट बना रहता है।

वर्षों रात-दिन भय और अवसाद में रह कर हिमालय और उसके जैसे लोग भयभीत पशु से चौकन्ने और डिफेंसिव हो गए हैं। उन्हें हर जगह खतरा नजर आता है, साजिश की बू आती है। वे अक्सर अपनी परछाई से डर जाते हैं। कल रात एक अँधेरी गली से गुजरते हुए हिमालय को भ्रम हुआ था अपना पीछा किए जाने का। अचानक उसने मुड़कर गुलाबों की झाड़ियों पर अंधाधुंध पत्थर चलाया था। पेड़ों पर सोए पंछी जाग गए थे। इमारतों के पीछे से कहीं-कहीं से झाँकती सफेद चाँदनी में चमकते हुए पेड़ उसे नकाबपोश-से लगे थे। ये डरावने साए सदियों से उनका पीछा कर रहे हैं। ये स्मृतियाँ, विभ्रम जीवन के पार से है - कई जन्मों के! वह भागते हुए सात समंदर पार चला आया, मगर इनसे पीछा नहीं छूटा। ये डर कब तक, ये दौड़ कहाँ तक, हिमालय, हिमालय जैसे लोग थक गए हैं। उन्हें अपनी जमीन चाहिए, अपने हिस्से का आकाश चाहिए जो हो कर भी नहीं है। एक उम्मीद का किसी तरह ना मरना, हर हाल में बने रहना उन जैसों की त्रासदी है।

अपनी अधखाई सैंडविच बगल में बेंच पर रख कर हिमालय ऐल्बे नदी की पारे-सी कौंधती धार को तकता रहा था। टेम्स उसे अपनी वितस्ता की याद दिलाती है। वही चमक, वही रवानगी, गर्मी में रेशमी दुपट्टे-सी सरसराती, ठंड में बर्फ बनती बोझिल और फिरोजा से शनैः-शनैः सफेद होती हुई... पाईन की गंध में, सुलगते चिनार में, स्ट्राबेरी की सुर्ख लतरों में कश्मीर की याद है, याद जो एक ही साथ उसे सुख और दुख से भर देती है। अपनी जमीन अपनी भीतर ले कर वह वर्षों से जी रहा है, मगर बेघर, बेवतन है! हर बार, जब भी वह यहाँ, ऐल्बे के किनारे घूमने आता है, इसके पानी को छू कर अपनी वितस्ता से वादा करता है - वह - वे - जल्द लौटेंगे उसके पास, उसकी पवित्र लहरों में दीये फिराने के लिए, उसे अंजुरी में भरकर सूरज को अर्घ्य चढ़ाने के लिए। ठीक अपने पूर्वजों की तरह जो आज भी उनके तर्पणों के लिए प्यासे कंठ भटकते हुए उनकी राह देख रहे हैं...

अपने ख्यालों में डूबा हिमालय ना जाने कब तक उसी तरह एकटक नदी की तरफ देखता हुआ बैठा रहा था। तंद्रा तब टूटी थी जब एक युवती उसके बगल में बेंच पर आ कर बैठी थी - गुडेन टाक! आज मौसम कितना खूबसूरत है! हिमालय ने उसे उचटती निगाह से देखा था - दुबली-पतली, बादामी आँखों और सुनहरे बालों वाली बीस-बाईस साल की युवती। 'गुडेन टाक' कह कर हिमालय फिर से पानी की तरफ देखने लगा था। उसे अपने में होने की, निरंतर बने रहने की आदत पड़ गई है। वह - उस जैसे लोग

अपने भीतर की दुनिया के बाशिंदे हैं। जिस मिट्टी से बेदखल किए गए उसी मिट्टी में हर साँस बसे रहने की पागल जिद... उन्हें अपनी दीवानगी से रिहा नहीं होना। ये दीवानगी उन्हें रास आ गई है। स्मृतियों में बसे घरों की नींवें दिल में गहरी पैठी होती हैं। पाताल में उतरी हुई जड़ें...

थोड़ी देर चुप रहने के बाद उस युवती ने शायद संवाद शुरू करने के इरादे से फिर कहा था - इस नदी में ऐसा क्या है जो इस तरह देख रहे हो? जवाब में ना चाहते हुए भी हिमालय ने कहा था - इस नदी में मेरी नदी की स्मृति है...

सुनकर वह युवती अचानक से थोड़ी देर के लिए चुप हो गई थी और फिर जाने कैसी आवाज में कहा था - सब के भीतर कोई न कोई नदी होती है, पहाड़, मरुभूमि और समंदर भी... मेरे भीतर भी है मृत सागर - ब्लैक सी!

उसकी बातों ने हिमालय में उसके प्रति उत्सुकता जगाई थी। उसने अब उसे कुछ ध्यान से देखा था - मृत सागर! आप कहाँ की हैं? जवाब में उस युवती की आँखें बुझ गई थीं - कहीं की नहीं! मैं यहूदी हूँ! हिमालय को उसकी बातें, जुबान, आँखों की उदासी - सब पहचानी हुई लगी थी। वह उन जैसी है - अपनी जमीन की तलाश में सदियों से भटकती हुई रूहें! उसने इस बार आत्मीय लहजे में उसक नाम पूछा था। उसने अपना नाम लिजा बताया था। बात करते हुए दोनों जहाज पर चढ़े थे। यह जहाज शैलानियों को दो घंटे तक घुमाएगा। जहाज के डेक पर खड़े होकर दोनों नदी के किनारे खड़ी ऊँची, विशाल इमारतों को देखते रहे थे। कितनी पुरानी और गंभीर! पानी में लंगर डाले हुए जहाज, दूर मछलियों पर झपटते सी गल और आसपास से गुजरते हुए जहाज, याट और नावें... आकाश खुला था इसलिए ठंड भी तेज थी।

हवा चाकू की तरह धारदार! अपने हाथ एक-दूसरे से रगड़ते हुए हिमालय ने लिजा की दुबली बाहों में उभरते सुर्ख दानों को देखा था। उसने इस समय टी शर्ट के ऊपर एक बाँह कटा हल्का स्वेटर पहना हुआ था। वह अंदर जाकर रेस्तराँ से दो ग्लु वाईन ले आया था जिसका एक गिलास उसने आभार के साथ स्वीकारा था। गर्म लाल वाईन से धुआँ उठ रहा था। काँच के गिलास को घुमा-घुमाकर हाथ सेंकते हुए दोनों ने साथ-साथ वाईन पिया था। वाईन की गर्मी थोड़ी ही देर में नसों में सुखद ताप की तरह फैल गई थी। हिमालय को कांगड़ी की याद हो आई थी। चिल्लेकलाँ के बेरहम चालिस दिनों के दौरान यही उनका संबल हुआ करती थी। फिरन के भीतर हीरे-मोती की तरह लोग उन्हें छिपाए फिरते थे। सर्दी से पहले ही कांगड़ी के लिए चिनार के पत्ते इकट्ठा करने की धूम पड़ जाती थी। यहाँ के मटमैले, ठिठुरे हुए सर्द दिन बार-बार उसे उस

जमीन की याद दिलाती है जहाँ नाल के साथ-साथ उनकी जान भी गड़ी है... एक गहरी साँस के साथ उसने सोचा था, उन स्मृतियों से रिहाई नहीं! चाहे वह दुनिया के किसी कोने में चला जाय।

लिजा के सूखे, सुनहरे बाल हवा में बेतरतीव उड़ रहे थे। आँखों में आकाश का नील नीलम की तरह चमक रहा था। इतने उजले दिन में भी उसकी त्वचा और पूरी शख्सियत में उदासी कोहरे की तरह जमी हुई थी। वह मुस्कराती थी, बोलती थी मगर जाने क्या था जो उसमें नहीं था। उस कुछ ना होने ने ही शायद उसे भीड़ से अलग कर दिया था। एक परछाईं की तरह सबके साथ हो कर भी वह कहीं नहीं होती थी। दूर पानी की सतह पर चिल्लाते और गोल-गोल चक्कर लगात हुए जल पंछियों की ओर देखते हुए उसने अन्यमनस्क भाव से बताया था, रूस में उसका जन्म हुआ और वहीं पली-बढ़ी। फिलहाल एक प्रायमरी स्कूल में बच्चों को चित्रकला सीखाती है। शादी हुई थी मगर तीन महीने में ही टूट गई...

हिमालय ने पूछा था, वह घूमने के लिए जर्मनी ही क्यों आई? जवाब में लिजा ने गहरी साँस ली थी - अपने पुरखों से मिलने आई हूँ... फिर थोड़ी देर बाद रुक-रुककर बोली थी - उनके कब्र तो नहीं मिले मगर इस देश की जमीन पर जहाँ भी पैर रखती हूँ, उनकी धड़कनों को महसूस करती हूँ। मेरे अपनों के खून और आँसू से यहाँ की मिट्टी सात परतों तक गीली है। एक छोटी चुप्पी के बाद फिर वह कुछ हैरत से बोली थी - जाने इस देश को नींद कैसे आती है!

लिजा की बातें हिमालय के भीतर आग की तरह कौंधी थी। जिस मद में डूबकर एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से घृणा करता है, उसे सताता, प्रताड़ित करता है, उसी मद में चूर हो कर वह सोता है। जैसे उनके हमवतन सो रहे हैं, ये जागे हुए लोगों की नींद है इसलिए शायद कभी ना टूटे! वर्ना बाईस साल बहुत होते हैं जागने के लिए।

जहाज से उतर कर स्टेशन की तरफ बढ़ते हुए लिजा ने कहा था - अच्छा हिमालय! सोचो तो, अगर ये चींटियों की कतार की तरह उतरते इनसानों के चेहरे, कपड़े, भाषा, कद-काठी एक जैसे होते तो कैसा लगता? दुनिया कितनी बदसूरत और उबाऊ होती ना? फिर क्यों लोग दूसरों को बदलने की कोशिश करते हैं, उन्हें अपनी तरह बनाना चाहते हैं! आई टेल यु, इट्स वर्स्ट काइंड ऑफ वायलेंस! लिजा की बातों ने हिमालय को जाने क्या-क्या याद दिला दिया था... अपनी ही मिट्टी के लोग आँखों में अंगार भर कर चिल्लाते हुए - अल जेहाद! अल जेहाद! अल जेहाद!

उन नफरत के जहर उगलते फेनिल होंठों ने उन्हें कितना त्रस्त, कितना अकेला कर दिया था कि कुछ ही दिनों के भीतर लाखों पंडितों ने अपनी जन्नत, अपना कश्मीर छोड़ दिया था। हिमालय ने थकी हुई आवाज में कहा था - ये बातें रहने दो... जाने कब से भाग रहे हैं हम इस नफरत से। इतिहास के पन्ने पलट कर देख लो, यह सातवाँ विस्थापन है हमारा! अपनी रूह, अपनी पहचान, आस्था, पवित्र किताबों की हिफाजत के लिए बस भाग रहे हैं - आज भी! पीछे-पीछे वही फतवा - या रलिव, या गलिव, या चलिव... या तो हम में विलीन हो जाओ, या खत्म हो जाओ या इस जमीन से दफा हो जाओ... इन्हीं तीन विकल्पों के बीच हम भट्ट लोग वर्षों से जी या मर रहे हैं!

लिजा को शायद उसकी बात समझ नहीं आई थी। उसने असमंजस से कहा था - तुम क्यों भागोगे? तुम्हारा वतन है, तुम्हारे लोग हैं, तुम हिंदुस्तानी हो! उसके सवाल पर हिमालय चुपचाप उठ खडा हुआ था। वह लिजा को क्या बताता या समझाता। यही तो उनका कसूर था - हिंदुस्तानी होना - हर अर्थ में! निर्दोष होना शायद सबसे बड़ा गुनाह है इस दुनिया में। इसकी सजा कभी माफ नहीं होती! उनकी ट्रेन आ रही थी। अब तक वे स्टेशन की एक बेंच पर बैठकर बात कर रहे थे। उन्हें हैंबर्ग से वेन्टॉर्फ जाना था। वही हिमालय एक जर्मन बुढ़िया के यहाँ पेइंग गेस्ट की हैसियात से रहता है एक कमरा लेकर। लिजा राईन्बेक में अपनी एक आंटी के यहाँ ठहरी है। उसकी आंटी एक यहूदी स्कूल चलाती है यहाँ के यहूदी बच्चों के लिए। हैंबर्ग से ट्रेन वेन्टॉर्फ तक सीधी नहीं जाती। इसके लिए हिमालय को राईन्बेक या बैरगेडर्फ से बस पकड़नी होती है। वेन्टर्फ के एक पिज्जारिया में वह काम करता है। अस्थायी काम। विगत दस सालों में उसने शायद यहाँ पचास नौकरियाँ की है, हर तरह की - अधिकतर ब्लैक में। एशिया के और प्रवासी हिंदुस्तानियों के यहाँ। शोषित तो हुआ मगर किसी तरह जीने की जुगाड़ भी होती रही। एसाइलम की लंबी कानूनी लड़ाई के बाद अब कही जा कर उसे काम करने का परमिट मिला है। सिर्फ अस्थायी नौकरी के लिए। मगर यह भी कम नहीं उसके लिए। वह खुश है। जिंदा रह पाना उन जैसों के लिए सबसे बड़ी लक्जरी है, एक तरह से अय्याशी ही।

उसके निमंत्रण पर लिजा उसके साथ उसके कमरे में चली आई थी। हिमालय ने उससे कहा था 'अगर यकीन कर सको तो...' उसकी बात पर लिजा खूब खुल कर हँसी थी - यकीन नहीं तभी डर भी नहीं! हम लोग दुख-दर्द, डर से इम्युन हो गए हैं। खोने के लिए हमारे पास कुछ भी नहीं! उसकी बात पर हिमालय भी हँसा था - तब ठीक। देने के लिए मेरे पास भी कुछ नहीं।

हिमालय बुढ़िया के घर के तहखाने यानी 'केलर' में रहता है। यहाँ धूप नहीं आती, हवा नहीं आती। कमरे के बाहर की गैलरी के ऊपर लगी जाली पर से या तो रात-दिन गुजरते हुए लोगों के पाँव दिखते हैं या मटमैला, धूसर आकाश। इसी कमरे में मुफ्त रहने के लिए हिमालय को बुढ़िया के हजार काम करने पड़ते हैं - उसके लॉन की घास छीलना, कचरा फेंकना, बाजार करना, हर तरह के बिल भरना। फिर भी बुढ़िया खुश नहीं रहती उससे। हर समय बड़बड़ाती है। वह उसके लिए 'आउस लैंडर' यानी विदेशी है जिन्हें यहाँ सब शक और अवज्ञा की नजर से देखते हैं। हिमालय को अब इन बातों से कोई फर्क नहीं पड़ता। वह वर्षों से बेघर है, शरणार्थी है। इन अजनबी, नफरत भरी आँखों की उसे आदत हो गई है। देश में भी, यहाँ भी। वह यहाँ की दीवारों पर लिखे नारे - 'आउस लैंडर, राउस' यानी विदेशी यहाँ से निकलो - पढ़कर चुपचाप आगे बढ़ जाता है, बदतमीज पंक और उद्दंड किशोरों के बीच की अँगुली के अश्लील इशारों को अदेखा कर देता है। उसकी अपनी जमीन पर भी उनके लिए ऐसी ही तहरीरे लिखी होती थीं - पंडितों! कश्मीर छोड़ो!

उसके कमरे में आ कर लिजा गंभीर हो गई थी - तुम्हारा यह कमरा मुझे कॉन्सेंट्रेशन कैंपों की याद दिला रहा है - तंग, अँधेरी कोठरियाँ... एक-दूसरे से चिपकी माचिश की डिबियों की तरह, हवा, उजाले, धूप से वंचित... मेरी दादी कहती थी हमारे 'घेटो' खुले हुए कचरा पेटी की तरह गंदे और तंग हुआ करते थे। कँटीले तारों से घिरी ऊँची दीवारों के पीछे की खूबसूरत दुनिया को यहूदी एक तरह से भूल ही चुके थे। कभी किसी ने इन्हें पार करने का दुस्साहस किया तो उन पर सेफर्ड डॉग्स छोड़ दिए गए! कहते हैं वे यहूदियों की बोटियाँ नोच-नोचकर भेड़ियों की तरह आदमखोर बन चुके थे। ओह! वे कॉन्सेंट्रेशन कैंप्स, घेटो, किलिंग सेंटर, लेबर कैंपस... पूरे यूरोप में फैले हुए। पोलैंड में जर्मनी ने पहला घेटो 1939 को बनाया था। जानते हो हिमालय, दूसरे विश्व युद्ध के दौरान जर्मनी ने एक हजार घेटोस का निर्माण जर्मनी अधिकृत पोलैंड और सोवियत यूनियन में किया था। घेटोस के नरक में लाखों यहूदियों को कैद कर नाजी उन्हें पूरे यूरोप से मिटा देने का कुचक्र रच रहे थे जिसे वे 'फाइनल सॉल्युशन' कहते थे।

कहते हुए लिजा सिगरेट के कश जल्दी-जल्दी लेती है। बिना रूम हीटर के इस ठंडे कमरे में भी हिमालय उसके माथे पर पसीने की बूँदें देखता है। उसे जम्मू के शरणार्थी कैंप याद आते हैं - घेटोस! किसी नाजी जर्मनी में नहीं, अपने देश भारत में! विश्व के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश में! मुट्ठी कैंप के वे अवसाद भरे दिन... उसे भी सिगरेट की तलब होती है। बिना पूछे वह लिजा के हाथ से सिगरेट ले कर पीने लगता है। लिजा कुछ नहीं कहती। वह समझती है जलावतन हुए लोगों का डर, ये उनके साझे का है।

हिमालय फ्रिज से रेड वाईन की एक बोतल और पिज्जा के चार टुकड़े निकाल लाया था। बोतल आधा खाली था। लिजा टुना फिश पिज्जा के वे टुकड़े अवेन में गरम कर लाई थी। कमरे में एक ही पुराना सोफा था जिसका एक पैर टूटा होने की वजह से वह एक तरफ झुका हुआ था। उसी पर बैठकर दोनों ने वाईन के साथ पिज्जा खाया था। हिमालय ने गौर किया था, लिजा स्वभाव से बहुत सीधी-सादी लड़की थी। उसकी अँग्रेजी टूटी-फूटी थी और और बोलने का लहजा रशियन। हिमालय को उसका यूँ मिलना और सहज घुल-मिल जाना बहुत अच्छा लगा था। एक तरह से वह एकदम अकेला था यहाँ। जिस पिज्जारिया में वह काम करता था, वहाँ उसके कुछ दोस्त जरूर थे जिनमें पाकिस्तान का जमील खास था। वह शिया मुसलमान था और कहता था कि शिया मुसलमानों के लिए पाकिस्तान वैसा ही है जैसे यहूदियों के लिए नाजी जर्मनी। मुहर्रम के दौरान हुए एक मजहबी दंगे में अपना सब कुछ गँवाकर वह यहाँ भाग आया था। दूसरा था यशपाल।

वह अफगानिस्तान में युद्ध के दौरान राजनीतिक एसाइलम ले कर यहाँ आ गया था। अक्सर मजाक में कहा करता था, भला हो इन जेहादियों का, मुझे इस जन्नत में आस्ताना मिल गया! वर्ना जो लोग बुद्ध की मुंडी मरोड़ देने से बाज नहीं आते वे हमारी गर्दनों का क्या हश्र करते! सुनकर हिमालय को कश्मीर के टूटे हुए शिवालय याद आते। इस दुनिया ने भगवान को भी बेघर कर दिया है। कड़ोरों लोगों के साक्षात भगवान दलाई लामा भी शरणार्थी हो कर धर्मशाला में बैठे हुए हैं। फिर उसकी - उसके जैसे लोगों की औकात क्या! यशपाल जर्मनी में एक दिन अपना रेस्तराँ खोलने का सपना देख रहा था। इसके लिए एक जर्मन लड़की से पेपर मैरिज करने के लिए वह पैसे जमा कर रहा था। पेपर मैरिज यानी इस देश में रहने के सारे कानूनी अधिकार पाने के लिए यहाँ की किसी लड़की को पैसे दे कर उससे नाम मात्र का कागजी विवाह! खैर! इन्हीं दोनों के साथ उसका विशेष संपर्क था, वर्ना वह अकेला ही था।

उसे हर पल अपनी पैंसठ साल की बूढ़ी माँ की याद आती है जो आज भी जम्मू की जगती में बनी नई कॉलोनी की एक छोटी-सी कोठरी में बैठकर अपनी बेटी की लूटी हुई अस्मत और लूटे हुए डेजिहोर के जोड़े के लिए रोती रहती है। उसे नालायक मानती है और भगोड़ा भी। उसके एकलौते बेटे ने इस बुढ़ापे में उसका साथ न दिया। पति भी ऐसा ही था - भगौड़ा! गांधरबल इलाके के वंदहामा गाँव में आतंकवादियों ने कत्ले आम किया तो 25 पंडितों के साथ वे भी मर कर उससे जान छुड़ाई! एक बार भी नहीं सोचा, जालिमों के निजाम में जवान होती लड़कियों को चील-कौवे नोंच खाते हैं...

लिजा खा-पी रही है, उससे बोल भी रही है मगर अपने में है - अपने भीतर की किसी दुनिया में। इस एक दुनिया में सबकी जाने कितनी-कितनी दुनिया है! नक्शे पर दुनिया के जिस्म पर खींची बदसूरत लकीरों को देखकर वह सोचता है, सारा खेल इन लकीरों का है। लकीरें खींचते-खींचते इनसान खुद में भी कई-कई टुकड़ों में बँट गया है। फिर भी इन लकीरों को विराम नहीं! चल रहे हैं दिलों पर, जिंदगी पर, मुहब्बत और यकीन पर... सोचते हुए हिमालय बोझिल हो उठता है। पिज्जा के टुकड़े समेत प्लेट उठाकर सिंक में रख आता है। लिजा उसके सी डी कलेक्शन से ढूँढ़ कर एल्विस प्रेसली का गीत लगाती है - सम वन बिल्डिंग कैंडी हाउस फॉर मै स्वीट सिक्सटीन... हिमालय की तरफ हाथ बड़ा कर कहती है - डांस? हिमालय सीडी का वॉल्युम कम करके उसके साथ नाचता है - रोमियो-जुलियट आज भी तेज संगीत की धुन पर नाच नहीं सकते... ये वही जर्मनी है लिजा! 'हूँ' लिजा अपनी बुझी आँखों में चमक भरने की कोशिश करती है - अल्वेयर कामू ने हम जैसों की ही कहानी लिखी है न...

लिजा की देह से बासी परफ्यूम, वाईन और पिज्जा की गंध आ रही है। उसकी त्वचा की रंगत उबले हुए अंडे की तरह धूसर सफेद है मगर छूने में बेहद नर्म और रेशमी। शायद इसीलिए हिटलर यहूदी स्त्रियों की खाल से जूते बनवाने के लिए वैज्ञानिकों से प्रयोगशाला में प्रयोग करवा रहा था!

हिमालय खुश होना चाहता है, इस पल को, एक स्त्री देह के सानिध्य को महसूसना चाहता है मगर... स्त्री देह के नाम से उसे अपनी बहन जान्हवी का उघड़ा हुआ शरीर याद आता है - असंख्य नील-लाल दागों से भरा बीच बाजार पड़ा हुआ। सूजकर एकदम ढोल! हिमालय के हाथ अनायास लिजा की कमर के इर्द-गिर्द शिथिल पड़ जाते हैं। वह वापस सोफे पर जा कर बैठ जाता है। बेहद थका, शर्मिंदा-सा। लिजा कुछ नहीं कहती और वह भी आकर उसके करीब बैठकर अपने गिलास में बची हुई वाईन पीने लगती है।

थोड़ी देर बाद हिमालय ने सफाई देने के-से अंदाज में कहा था - जब एक मनःस्थिति प्रखर रहती है तब दूसरी इच्छाएँ शिथिल पड़ जाती हैं। वर्षों अवसाद में रह कर हमारी सहज-स्वभाविक इच्छाएँ नष्ट-सी हो गई हैं। आँकड़े बताते हैं, हम खत्म हो रहे हैं...

लिजा अपनी आवाज में चहक भरने की कोशिश में नाकाम होती हुई कहती है - मैं इन जर्द मौसमों में रंगीन तितलियाँ ढूँढ़ती फिरती हूँ। हमें अपनी कोशिश जारी रखनी है हिमालय, खुशियों पर से, जिंदगी पर से अपना दावा कभी नहीं छोड़ना है। हिमालय उसकी आँखों में वाईन की फैलती लाली देखता हुआ चुप बैठा रहता है। अचानक उसे

लग रहा है वह बहुत थक गया है। कल से फिर वही दस घंटे की कमरतोड़ ड्युटी! रात-दिन इस रफ्तार से गुजर रहे हैं मगर वक्त उसके लिए वही ठहरा रह गया है - कश्मीर की वादियों में! वह आगे बढ़ना चहता है मगर हर कदम पीछे की ओर लौटता है, वही, उसी जमीन पर जहाँ वे अपना आप वर्षों पहले छोड़ आए थे।

लिजा उससे कहती है, बड़ा अनोखा है तुम्हारा देश! वहाँ दुनिया के हर कोने से लोग आते हैं और शरण पाते हैं। पारसियों की पवित्र आग जो वे ईस्लामी जेहाद के दौरान ईरान से बचा ले आए थे, आज भी तुम्हारे देश में अक्षुण्ण जल रही है... अल्पसंख्यक समुदाय जैसे सिख, जैन, पारसी समृद्ध और सुरक्षित हैं... लिजा हिंदुस्तान के विषय में अच्छी जानकारी रखती है यह उसकी बातों से समझ आता है। हिमालय उसकी बात चुप रह कर सुनता है, कुछ कहता नहीं। कहता भी तो क्या? यही कि जिस देश में पूरी दुनिया के लिए जगह है, जहाँ करोड़ों की संख्या में पड़ोसी देशों से आए शरणार्थी हैं, उसी देश में उसकी अपनी संतानों के लिए जगह नहीं है! कैसा विरोधाभास है! हिमालय बातों का रुख बदलना चाहता है क्योंकि यह प्रसंग बहुत अप्रिय है उसके लिए - जहाँ इस समय हम बैठे हुए हैं, उस देश ने तुम्हारी जाति के साथ बहुत अन्याय किया है, नहीं? लिजा उसकी बात अनसुनी करके देर तक बैठी रहती है फिर उठ कर सिंक पर पड़े बर्तन धोने लगती है। उसने देख लिया था, इस छोटे-से कमरे में कोई डिश वासर नहीं है। थोड़ी देर प्रतीक्षा करके हिमालय ने फिर अपना प्रश्न दोहराया था और इस बार एप्रोन में अपने हाथ पोंछती हुई लिजा एक बार फिर उसके करीब आ बैठी थी - सच है नाजी जर्मनी ने हमारी कौम के साथ बहुत बुरा किया मगर यह भी सच है कि सिर्फ इन्होंने ही हमारे साथ बुरा सलूक नहीं किया। बहुतों ने किया। यहूदी जाति के साथ बर्बरता और घृणा का व्यवहार बहुत पहले शुरू हो चुका था, दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में। जानते हो हिमालय, सारे यहूदियों को चरित्र से हमेशा एक माना गया और इसी लिए सब को बराबर सजा का हकदार माना गया - एक दुधमुँहे बच्चे ले कर एक सौ साल के बूढ़े तक को! पूर्वाग्रह की हद समझ सकते हो। और यह सब खुद को सभ्य और सुसंस्कृत समझने वाली पश्चिमी दुनिया करती रही है हमारे साथ!

कहते हुए लिजा की आवाज और साँसें तेज हो गई थी मगर बिना रुके वह कहती रही थी - एंटी सेमिटिस्म यानी यहूदियों के प्रति घृणा इस दुनिया की एक बहुत पुरानी और खतरनाक बीमारी है। मगर इस बीमारी का नामाकरण पहली बार 19वीं सदी में जर्मनी ने किया। यहूदियों के विरुद्ध पहला तथाकथित जेहाद **1096** में हुआ। फिर **1290** को उन्हें इंगलैंड से निकाला जाना, स्पेन के यहूदियों की सामूहिक हत्या **1391**

में, फिर वहाँ से भी उनका निष्कासन **1492** में... यातना, उत्पीड़न का एक लंबा इतिहास है हिमालय! कहाँ तक गिनाऊँ! यूक्रेन में भी कोसाक नरसंहार, दी होलो कॉस्ट, रशिया में यहूदी विरोधी तरह-तरह के सरकरी फरमान... इन सबके साथ यहूदियों का इस्लामी तथा अरब देशों से निकाला जाना तो है ही!

'हूँ'! कहते हुए हिमालय उसे सुनता रहता है। बीच में कुछ कह कर वह उसकी सोच की प्रवाह, तारतम्य को तोड़ना नहीं चाहता। वह चाहता है कि लिजा आज बोले... खुद को हल्का करे। ये बोझ इनसान को भीतर ही भीतर दफ्न कर देता है। वह स्वयं इस घुटन का वर्षों से शिकार है। लिजा के भीतर की उत्तेजना उसके चेहरे पर है। वह अपनी मुट्ठियाँ बांधे कमरे में टहल रही है - किस तरह एक सभ्य, सुसंस्कृत दुनिया एकदम सुनियोजित तरीके से एक अल्पसंख्यक जाति को बदनाम, प्रताड़ित और निःशेष करने की साजिश रचती है! यहूदियों से नफरत करने के सौ कारण वे ईजाद करते हैं - यहूदियों की नस्ल आर्य नस्ल से कमतर है, उसके खून में नीचता है, वह पूरी दुनिया के लिए दुर्भाग्य का कारण है, वह किसी का वफादार नहीं होता, जिसकी शरण लेता है, उसी की बुराई करता है, नमकहराम, देशद्रोही, येसू का हत्यारा... हिमालय को ये शब्द जाने-पहचाने लगते हैं। वह लिजा के भीतर की खौल को महसूस करता है। उसकी आँच उसके जिस्म तक पहुँच रही है। अपने भीतर इतनी आग समोए वह जिंदा कैसे है! अब तक राख कैसे नहीं हो गई! ये चलते-फिरते जिस्म, मुस्कराते चेहरे वास्तव में कब्रिस्तान हैं। इनके भीतर जिंदगी नहीं, बस मौत है, लाशें हैं सड़ती-बसाती हुई।

लिजा जैसे एकालाप किए जा रही है, खुद में बड़बड़ाती हुई - बुद्धिजीवियों की बुद्धि का भी सदुपयोग देखो - साहित्यकार, इतिहासकार, चित्रकार, संगीतकार - सभी अपनी कला के माध्यम से यहूदियों के खिलाफ जनसाधारण के मन में नफरत पैदा कर रहे थे। कोई अखबार निकाल रहा था, कोई पैंफलेट छाप रहा था तो कोई पर्ची बाँट रहा था। यहूदियों की वजह से सबके धर्म, संस्कृति, अस्मिता खतरे में पड़ गए थे। जाने कितनी किताबें यहूदियों की कारस्तानियों पर लिखी गईं। उस समय हमारे समुदाय को ले कर हर जगह तरह-तरह के चुटकुले प्रचलित थे। फिल्मों में दिखाए जाने वाले अधिकतर खल पात्र भी यहूदी ही होते थे। हमारी जाति शैतान की जाति है। हम एक दिन पूरे विश्व का धर्मांतरण कर सबको यहूदी बना देना चाहते हैं... संक्षेप में सारी बुराई, तकलीफ, फसाद की जड़ में हम यहूदी ही थे। इसलिए हमें इस दुनिया के नक्शे से मिटा देना सबका परम कर्तव्य बन पड़ा था। इन बातों के माध्यम से तुम समझ ही सकते हो, यहूदी जाति के प्रति घृणा लोगों के डीएनए में है। इसे मिटाना इतना सहज नहीं!

उसकी बातें सुनते हुए हिमालय एक नई सिगरेट सुलगाता है। बाहर मकान मालकिन का कुत्ता ऊपर की बाल्कनी में रह-रहकर भौंक रहा है। मकान मालकिन मिसेज वॉल्टर्स उसे डाँट रही है। उसने शायद बाल्कनी की लाईट भी जला ली है। हिमालय जानता है, वह खब्ती किस्म की महिला है। उसे चिंता हो रही है। यहाँ बहुत सावधानी से रहना पड़ता है। युवा लड़के, खासकर एशियन और अफ्रीकन लड़के हमेशा शक की नजर से देखे जाते हैं। कभी रात को काम से लौटते हुए देर हो जाय तो खाली पड़े स्टेशनों में कभी हुड़दंगी लड़के परेशान करते हैं तो कभी सुनसान सड़कों पर पेट्रोलिंग पर निकली पुलिस रोक कर पूछताछ करती है।

बाहर के शोरगुल से लिजा का ध्यान हटाने के लिए हिमालय लिजा से दूसरा प्रश्न पूछता है - और पूर्वी देशों में? जहा तुम लोगों की उत्पत्ति हुई...

लिजा भी बाहर की आवाजों को सुन रही थी। फिर भी खुद को सहज दिखाते हुए वह बात करती रही थी - हर जगह वही दुर्व्यवहार, उत्पीड़न... धार्मिक अल्पसंख्यक होने की वजह से हर जगह हमें बहुसंख्यक समुदाय से शोषित और अपमानित होना पड़ा। येसू मसीह की हत्या का कलंक और सजा हमारी हर पीढ़ी को सहनी पड़ी, हालाँकि येसू हमारी ही तरह खुद भी एक यहूदी थे।

लिजा की बातें हिमालय को अनायास अपने देश की ओर धकेल ले चलती हैं। कश्मीर में वे यानी पंडित समुदाय भी अल्पसंख्यक थे। उन्हें भी हर पल आतंक में गुजारना पड़ता था, चुप रह कर सब कुछ सहना पड़ता था। उसे याद आता है **1992**- आतंकवाद के शुरुआती दौर में माँ का धीमे स्वर में गायत्री मंत्र पाठ करना, शाम ढलते ही पूरे परिवार का दरवाजा बंद कर घर के भीतर बैठ जाना, छोटी बहन जान्हवी का सर से पैर तक खुद को ढक कर स्कूल के लिए घर से निकलना। कोई धार्मिक अनुष्ठान, सांस्कृतिक कार्यक्रम। राजनीतिक गतिविधि वे खुलकर नहीं करते। बहुत लो प्रोफाइल रहते ताकि किसी की नजर में ना आए, ना खटके। पड़ोसी देश के साथ कारगिल का युद्ध हो, सीमा पर तनाव हो या क्रिकेट मैच हो, उनकी स्थिति शोचनीय हो जाती। हिंदुस्तान के किसी भी तथाकथित अपराध या गलती का दंड उन्हें ही भरना पड़ता। देश के किसी हिस्से में दंगे भड़कते, सांप्रदायिक तनाव होता, वे सूख कर काठ हो जाते। कोई उन्हें हिंदुस्तान का जासूस समझता तो कोई सरकारी पिट्ठू! बिना किसी जुर्म को अंजाम दिए जाने वे किस जुर्म के गुनाहगार थे। छोटी-मोटी झड़प में भी युवकों, बच्चों का उसकी माँ-बहन को चिढ़ाना - भट्टिनी-भट्टिनी दोदयय मस... यह सब कुछ बहुत अपमानजनक था।

सोचते हुए उसकी आँखें एक गीली चमक से भर गई थीं शायद जिसे देख कर लिजा ने उसके कंधे पर हाथ रखा था - हम सब के अवचेतन मन में एक समूह मन भी होता है जो अपनी जाति और पूर्वजों के सुख-दुख, करुणा, संत्रास की स्मृतियों में सुप्त भाव से जीता है। तभी तो कभी-कभी सुख में हम दुखी हो जाते हैं और दुख में भी सुख के अबूझ भाव से भरे रहते हैं। वास्तव में हर इनसान के भीतर कई-कई इनसान होते हैं... युगों पहले प्रताड़ित मेरे पूर्वज मेरे भीतर भी रोते हैं, उच्छवास भरते हैं और रातों को मैं सो नहीं पाती। मैं जानती हूँ कॉन्सेंट्रेशन कैंपों में, घेटोस में, किलिंग सेंटर में, लेबर कैंपों में भूख से, अत्याचार से, बीमारी से मरने वाले लाखों यहूदियों की मैं आत्मा हूँ। हर यहूदी के साथ हर बार, बार-बार मैं ही मरती हूँ। मेरे जिस्म में अनगिनत अदृश्य दाग हैं जिन्हें मैं ही देख सकती हूँ, कोई और नहीं। जानते हो, कोई रार-रात भर मेरे सरहाने बैठ कर रोता है, मुझे बच्चों की चीखें सुनाई देती हैं। सपनों में मास ग्रेव्स दिखते हैं। लाश ही लाश... जमीन खून से लाल, हवा में सड़ते इनसानी जिस्म की बदबू... ओह! बहुत भयावह है यह सब! असह्य! वर्षों से अवसाद में हूँ, नींद की अनगिन गोलियाँ भी अब काम नहीं करतीं...

"इन सब से बाहर आओ लिजा! बहुत जरूरी है यह..." उसकी बातें सुनते हुए हिमालय ने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया था। तो यह नर्क उसके अकेले का नहीं है! इस नर्क के बाशिंदे पूरी दुनिया में फैले हैं।

"कोशिश करती हूँ हिमालय! मगर खुद से छुट कर भी कहाँ जाऊँ! बाहर भी तो वही सब है। नए मुखौटे के नीचे दुनिया वही पुरानी है। जानते हो, कितनी बार हमारे स्कूलों पर हमले होते हैं? सीनागॉग - हमारे मंदिर - तोड़े जाते हैं? एक छिपा हुआ, प्रच्छन्न पूर्वाग्रह, घृणा तो है ही दिलों में। ये रक्तबीज की संतानें हैं, कभी मरेंगी नहीं। यूरोप में अरब देशों के लोग हमारे विरुद्ध हेट क्राईम करते हैं। फिलहाल सबसे बड़ा खतरा उन्हीं से है हमें।

इसके बाद एक लंबी चुप्पी में समय गुजरता रहता है। उस छोटे-से ठंडे, सिले कमरे में दो शरणार्थी एक-दूसरे के हाथ पकड़ कर मोम के पुतलों की तरह स्तब्ध बैठे रहते हैं। उनके चेहरों पर जाने कितनी लकीरे हैं, कुछ काँपती हुई, कुछ बेजान... शब्दों के परे उनकी यंत्रणा अभिव्यक्ति के नए मार्ग ढूँढ़ रहे हैं। आँसू, उच्छवास भी अब पुराने हो चुके, अभिव्यक्ति में असमर्थ हो चुके...

लिजा अचानक बेचैन हो उठती है - थोड़ी ताजी हवा चाहिए थी, दम घुट-सा रहा है! हिमालय खिड़की खोलता है। खिड़की के बाहर गैलरी की जाली पर पत्ते ही पत्ते बिखरे

हैं। उनमें से झाँक रहा है एक टुकड़ा आकाश, नीला, मटमैला... हल्की बहती हवा में सूखे पत्ते खड़खड़ा रहे हैं। दीवारों पर झुलती लतरों पर दूध के छींटे जैसे नन्हें सफेद फूल खिले हैं। उनकी धीमी, मादक गंध हवा में है। हिमालय लिजा को खिड़की के पास आने का संकेत करता है - इस समय रास्ते पर टहलना ठीक नहीं होगा। इतने-से आकाश से काम चला लो... लिजा कुछ नहीं कहती। बस सूखी, चमकती आँखों से आकाश की ओर देखती रहती है। जाने क्यों वह यकायक बहुत बेचैन हो गई है! उसे याद आ रही है अपनी दादी से हजार बार सुनी हुई एक कहानी - उनके पूरे परिवार का नाजी जर्मनी से भाग कर हंगरी में आश्रय लेने की कहानी। उसकी 99 साल की दादी सालों से पागल है और रात-दिन बस एक यही कहानी सुनाती रहती है। हर बार जब भी लिजा पागलखाने में जाती है उनसे मिलने, उनसे यह कहानी सुनती है और रोती है। साथ में दादी भी रोती है। दादी अपने बेतरह काँपते सर और हाथों को हिला-हिलाकर विस्फारित आँखों से कहती हैं - वो एक बहुत सर्द रात थी। चारों तरफ खेत-खलिहानों में पाला पड़ा हुआ था।

जिधर देखो, पेड़, जंगल, जमीन सफेद। जैसे कफन में लिपटी हो। नाजियों के अत्याचार से बचने के लिए हम तीस यहूदियों का एक दल हंगरी की ओर रात के अँधेरे में भाग रहे थे। तब तेरा बाबा पाँच साल का रहा होगा और हमारी जुड़वा बेटियाँ तीन साल की। हमारे कपड़े गीले थे, बर्फ की तरह ठंडे। तेरे दादा के पैरों की सभी उंगलियाँ ठंड से मर कर काली पड़ चुकी थी। बच्चों के फटे होठों से खून रिस रहे थे। भूख, प्यास और नींद से बेहाल जाने कैसे और कितने दिनों में नाजियों से छिपते-छिपाते हम हंगरी पहुँचे थे। मगर वहाँ भी अंततः हम कुछ ही दिनों में पकड़ लिए गए थे और एक भीड़ भरे घेटो में बंद कर दिए गए थे। वहाँ से तेरे दादा को किसी लेबर कैंप में ले जाया गया था, जहाँ से वे कभी नहीं लौटे... कहते हुए दादी पहले खूब जोर से हँसती फिर हिलक-हिलक कर रोती। अपने आँसू पोंछती हुई लिजा उनके शांत होने का इंतजार करती रहती और अचानक दादी शांत हो भी जाती और निर्लिप्त ढंग से कहानी सुनाने लगती - उस कैंप में हमारी हालत जानवरों से भी बदतर थी। किसी बात की सुविधा नहीं थी। छोटी-छोटी कोठरियों में लोग ढोर-डंगरों की तरह ठूस-ठूस कर रखे जाते। यहूदी पुलिस के द्वारा ही यहूदियों पर कड़ी निगरानी रखवाई जाती। हर दूसरे-तीसरे दिन बूढ़े और बीमारों को मारने के लिए चुन कर किलिंग सेंटर भेजा जाता। कभी किसी काम को करने से मना करने पर इन यहूदी पुलिस वालों को भी खुले आम गोलियों से उड़ा दिया जाता...

दादी कहती जाती और लिजा साँस रोक कर सुनती जाती। उसे यकीन नहीं होता... ऐसा भी हो सकता है! दादी बीच में तालियाँ बजा कर झूम-झूम कर गाने लगती - ओ जर्मनी! नाजी जर्मनी... सबका प्यारा-दुलारा जर्मनी... और फिर थू-थू कर थूकने लगती।

उस कहानी को सुनने लिजा बार-बार दादी के पास जाती, उनका मान-मनुहार करती। कभी दादी महीनों नहीं बोलती और कभी अचानक से बोलना शुरू कर देती - उस कैंप में लाशें नालियों में दिनों तक पड़ी रहतीं, बच्चे सड़कों में पड़े धीरे-धीरे मरते, आकाश में चीलों, गिद्धों का जमघट लगा रहता... हर तरफ भूख, बीमारी, अमानवीय अत्याचार... नरक था वह! जीवित नरक!

लिजा बिल्कुल चुप रहती। कुछ कह कर वह दादी का ध्यान भंग नहीं करना चाहती थी। एक बार वे बिदक गई तो फिर महीनों मुँह नहीं खोलेगी। कभी-कभी दादी के चेहरे की रेखाएँ नर्म पड़ती, एक उजली हँसी से उनकी काया भर उठती - उन शैतानों में एक भला आदमी भी था - डॉक्टर मिल्कमान! बच्चों से खास लगाव था उन्हें। जब भी कैंप आते, बच्चों के लिए मिठाई, खिलौने ले आते। मेरे बच्चे उन्हें 'आर्ज्ट ऑकेल' कह कर पुकारते थे।

लिजा को दादी की कहानी सुन कर तसल्ली मिलती - चलो! इस दुनिया में कुछ अच्छे इनसान भी होते हैं। दादी अबाध बोलती जाती - एक दिन वह डॉक्टर, जब मैं कहीं गई हुई थी, मेरी दोनों बच्चियों को उठा कर ले गया और ऑपरेशन के द्वारा उन्हें एक-दूसरे की पीठ से जोड़ दिया! सुन कर पहली बार लिजा सन्न रह गई थी - जोड़ दिया! "हाँ, जोड़ दिया..." कहते हुए अब दादी के चेहरे पर उन्माद के भाव दिखने लगते - कुछ ही दिनों में उनके घाव पक गए थे। उनकी पीठ से खून, मवाद बहता रहता और वे बच्चियाँ हलाल किए हुए जानवरों की तरह रोती-चिल्लाती रहती। मैं उन्हें तड़पते हुए देखती मगर कुछ नहीं कर पाती। उनके जख्मों में कीड़े पड़ गए थे... वे कीड़े मेरी बच्चियों को खोद-खोद कर खा रहे थे... मैं यह सब बर्दाश्त नहीं कर पा रही थी। उन दिनों मैं मुट्ठियाँ भींच-भींच कर अपने ईश्वर जेहोबा को कोसती रहती थी। कमजोर भगवान की संतानों को सब सताते हैं। "फिर? दादी फिर?" पूछते हुए लिजा को प्रतीत होता उसकी साँस रुक रही है। दादी अनमनी-सी कहती - फिर मुझे एक दयालु नर्स मिल गई। उसने मुझे थोड़ा मॉरफिन दिया। मैंने वह मॉरफिन खिला कर दोनों बच्चियों को जिंदगी से निजात दिलाई... अपनी कहानी खत्म करके दादी फिर झुम-झुम कर गाने लगती - ओ हिटलर... हेर हिटलर... मायने हिटलर! लिवलिंग हिटलर!

खिड़की पर खड़ी लिजा अचानक जमीन पर ढहने-सी लगती है। हिमालय उसे लपक कर सँभालता है। लिजा निरंतर बड़बड़ा रही है, जाने क्या... हिमालय अपनी बाँहों में लिजा के काँपते हुए शरीर को समेटे खड़ा रहता है। सामने की दीवार घड़ी में रात के बारह बजे हैं। पूरे मुहल्ले में सन्नाटा छाया हुआ है। शनिवार को लोग पार्टियाँ करते हैं, देर रात तक जागते हैं, मगर रविवार को जल्दी बिस्तर में चले जाते हैं। दूसरा दिन सोमवार होता है - भाग-दौड़, व्यस्तता का दिन। पहले हिमालय रातों को टहलने निकल जाता था मगर कई बार पेट्रोलिंग पुलिस से सामना होने के कारण अब नहीं निकलता। हजार तरह के सवाल करते हैं, कागजात देखना चाहते हैं। यह सब परेशान तो करती ही है, साथ ही अपमानजनक भी है। बहुत देर बाद थोड़ी शांत हो कर लिजा कहती है, सारा झगड़ा किस बात का है, पता है? पूर्वाग्रह का! जो हमारी तरह नहीं दिखता, हमारी भाषा नहीं बोलता, हमारे ईश्वर को नहीं पूजता वह गलत है, अपराधी है, पापी है। पूरी दुनिया एक-दूसरे को 'कन्वर्ट' करने में लगी हुई है। किसी को वह जो है, उसी रूप में ना स्वीकारना एक बहुत बड़ी हिंसा है। दुनिया का एक बहुत बड़ा हिस्सा हमें किन-किन बातों के लिए सताती रही, सजा देती रही। किसी को हमारे बाल, मूँछ और जुल्फों से आपत्ति थी तो किसी को हमारे पहनावे से। किसी को हमारी भाषा पसंद नहीं तो किसी को हमारी टोपी। पूजा स्थल तो हमेशा निशाने पर रहे। हमें अपमानित करने के कितने तरीके ईजाद किए गए। अछूतों की तरह हमारी बस्तियाँ शहर से बाहर होतीं, हमें शहर के भीतर आने की इजाजत नहीं होती। पहचान के लिए हमें बाहों में पट्टा या बैज बाँधना होता, हमारे घर भी चिन्हित किए जाते 'स्टार ऑफ डेविड' से। हंगरी के बुदापेस्ट में हमारे लोग जाने कितने अर्से तक ऐसे घरों में रहे। हर जगह हम दागी लोग थे। ऐसे लोग जिन पर यकीन नहीं किया जा सकता, जिन्हें वे कॉस्मिक ईवल पुकारते थे।

हिमालय उसकी बातें सुनता है और अपने दर्द में डूबता है। ये बातें जानी-पहचानी है, एक हद तक उसका जिया-भोगा भी है। सांप्रदायिकता, जातीय हिंसा, पूर्वाग्रह का शिकार हो कर ही आज उनका समाज अपने ही देश में शरणार्थियों का अपमानजनक जीवन बाईस सालों से जीने पर बाध्य है। वह दुनिया को समझा नहीं पाता कि जिस देश में लोग अपने धर्म की रक्षा के लिए शरण लेने आते हैं उसी देश के मूल निवासी सांप्रदायिकता का शिकार हो कर कैसे दर-ब-दर भटकने के लिए विवश हो सकते हैं। वोट और तुष्टिकरण की राजनीति शायद उनकी समझ से परे है। लोकतंत्र का यह एक काला पक्ष है। सोचते हुए वह अपनी हथेली पर पिघले मोम की गर्म बूँदों की तरह टपकते लिजा के आँसुओं को महसूस करता है। उसके भीतर भी एक पिघलाव है, लिजा की कहानी सुन कर वह अपने दुख में नम हो रहा है। सबके सुख का स्वाद

अलग-अलग होता है, मगर दुख की अनुभूति एक-सी। नसों में धीमे-धीमे घुलते जहर की तरह, कच्चे कब्र की तरह उदास बहता हुआ...

लिजा बाथरूम से अपना चेहरा धो आती है। उसकी आँखें और गाल, नाक की नोंक लाल है। बाल भी भीग कर माथे से चिपक गए हैं। उसके साफ, धुले चेहरे की तरफ देखते हुए हिमालय को अहसास होता है, लिजा आकर्षक है। किसी और परिस्थिति में वह दोनों मिलते तो न जाने कैसी कहानी बनती। मगर आज तो उसे सुख-दुख बाँटने वाला कोई दोस्त चाहिए था। आज उसके पिता की बरसी थी। उन्हें गए हुए इक्कीस साल हो गए... और जान्हवी को? वह सोचना नहीं चाहता। जान्हवी के साथ सतरूपा भी आ खड़ी होती है। जाने उसके पीछे इस लड़की का क्या हुआ! कभी-कभी जानने की इच्छा होती है मगर संपर्क करने की हिम्मत नहीं होती। एक दिन उसे छोड़ कर चुपचाप भाग आया था। क्या बताता उसे! उस समय यही लगा था कि अपने साथ उसकी जिंदगी बर्वाद करके क्या होगा। उसे भूल जाय, इसी में उसकी भलाई है।

लिजा को फ्रिज से पानी निकाल कर पीते हुए हिमालय कुछ देर देखता है और फिर अचानक पूछता है - हम इतना बर्दाश्त क्यों करते हैं लिजा? हमारे पास खोने के लिए अब कुछ नहीं है, फिर किस बात का डर!

"शायद इसलिए कि हमारा प्रतिरोध सिर्फ आत्महत्या साबित होगा... ऐसा नहीं कि हमने प्रतिरोध नहीं किया। प्रतिरोध किया था हमने, अपने तरीके से जबर्दस्त किया था। सशस्त्र संघर्ष! तुमने पढ़ा होगा 1943 में वार शॉ के सशस्त्र विद्रोह के बारे में। और भी कई घेटो में। बूढ़े, बच्चे, जवान, औरतें... सब! मगर क्या हुआ? नाजियों ने हमें कुचल कर रख दिया। दूसरों के देश में, जमीन पर सम्मान के साथ जीया नहीं जा सकता हिमालय। अपने देश क महत्व, घर का महत्व क्या होता है, हम यहूदियों से पूछो! इसलिए तो हम ईसरायल के लिए अपनी जान देते हैं।

कहते हुए लिजा ने उठ कर फिर से गाने का सीडी लगा दिया था - खूब मना लिया शोक हमने जीवन का, चलो अब थोड़ा जीते हैं! लैंप की पीली रोशनी में लिजा का मुस्कराता चेहरा सुनहरा दिख रहा है, त्वचा मसृन और मोतिया आब से भरा। हिमालय उठ कर उसकी कमर के इर्द-गिर्द अपनी बाँहें लपेटता है और दोनों संगीत की मादक धुन पर थिरक उठते हैं। हल्के उजाले में लिजा की बोलती हुई-सी नीली आँखें सितारे-सी चमक रही हैं। उनकी तरफ देखते हुए हिमालय के भीतर जाने क्या घटता है और वह धीरे से लिजा के चेहरे पर झुक आता है और ठीक तभी कमरे के बाहर कुछ आहट होती है और कोई दरवाजे पर जोर से दस्तक देता है। दोनों बेतरह चौंक कर एक-दूसरे से अलग

होते हैं और हिमालय सशंकित हो कर दरवाजा खोलता है। बाहर पुलिस खड़ी थी। साथ ही मकान मालकिन कुछ पड़ोसियों के साथ। ऊपर बाल्कनी में उनका कुत्ता लगातार भौंक रहा था।

बूढ़ी मकान मालकिन पुलिस से कह रही थी - मैंने इसे कई बार चेतावनी दी, मगर इसी तरह रातों को अपने आवारा दोस्तों के साथ मिल कर यहाँ हुड़दंग मचाता है, तेज संगीत बजा कर पड़ोसियों की नींद खराब करता है। दूसरे पड़ोसी भी उसकी हाँ में हाँ मिला रहे थे। सबकी बातें सुनते हुए पुलिस अफसर ने लिजा को घूर कर देखते हुए उसका नाम पूछा था और पूरा नाम सुन कर कुछ कौतुक से भर कर बोला था - यहूदी! लिजा का चेहरा सफेद पड़ गया था। मकान मालकिन लगातर चिल्ला रही थी - इसे कह दीजिए मेरा कमरा खाली कर देने के लिए, कल ही! पुलिस अफसर ने उसे चुप कराके बहुत तीखे लहजे में हिमालय से कहा था कि उसका ऐसा असमाजिक व्यवहार बर्दाश्त नहीं किया जाएगा, यह बात वह अच्छी तरह समझ ले और अपने दोस्तों को भी समझा दे। फिर कंप्लेन मिलने पर उस पर कानूनी कारवाई की जाएगी। इसके बाद सब चले गए थे। जाते हुए कोई हँस रहा था, कोई सीटी बजा रहा था। 'आउस लैंडर', 'इंडिस', 'युडे'**(**यहूदी**)** जैसे शब्द हवा में उछल रहे थे।

सबके जाने के बाद दोनों देर तक स्तब्ध-से खड़े रह गए थे फिर हिमालय ने लिजा से कहा था - चलो, तुम्हें तुम्हारी आंटी के घर पहुँचा दूँ। लिजा बिना कुछ कहे उसके साथ चल पड़ी थी।

रात एकदम स्याह और ठंडी थी। ओस में भीगे स्ट्रीट लैंपस की रोशनी सफेद धब्बे की तरह दिख रही थीं। रास्ते के किनारे खिले गुलाबों की खूशबू से हवा तर थी। बस स्टॉप पर बस का इंतजार करते हुए भी दोनों बिल्कुल चुप रहे थे। जैसे उनके बीच की सारी बातें एकदम से खत्म हो गई हों। अपनी-अपनी साँसों के भाप में घिरे दोनों ठंड में ठिठुरते खड़े रहे थे। एक लगभग खाली बस में बैठ कर दोनों बैरगेडर्फ रेल्वे स्टेशन पर पहुँचे थे। स्टेशन भी लगभग खाली था। एक कोने में कुछ पंक किस्म के लड़के कैन से बीयर पीते हुए हुड़दंग मचा रहे थे। दो अफ्रिकन लड़के बीयर के खाली कैन को ही फुटबॉल बना कर खेल रहे थे। उन्हें देख कर लिजा अपने आप में और सिमट गई थी। उसका यूँ सहमता देख हिमालय जाने क्यों भीतर ही भीतर ग्लानि से भर उठा था। इस समय लिजा की डरी हुई आँखें उसकी बहन जान्हवी की तरह दिख रही हैं। वह हमेशा इतना मजबूर क्यों है!

ट्रेन हमेशा की तरह एकदम समय पर आई थी। लिजा ने डिब्बे में खड़ी होकर जाने उसे किस नजर से देखा था - फोन करना... हिमालय ने उसका हाथ अपने हाथ में लेकर धीरे से कहा था - तय कर लिया लिजा, अपने वतन लौट जाऊँगा, अपनी जमीन के लिए लड़ते अपने लोगों का मूवमेंट ज्वाइन करूँगा... बहुत भाग लिया... सच, भगोड़ों का कोई वतन नहीं होता! उसकी बात सुन कर लिजा मुस्कराई थी - तुमने मेरे मन की बात कह दी... चलो, अपने घर लौटते हैं! फिर वहाँ जो मिले...

घोषणा के साथ ट्रेन के दरवाजे झटके से बंद हुए थे और थोड़ी दूर तक धीरे-धीरे सरक कर अचानक तेज गति से चल पड़ी थी। काँच की चमकीली खिड़की पर लिजा के हिलते हुए हाथ की तरफ देखते हुए हिमालय अचानक से हल्का हो आया था - उसका वनवास पूरा हुआ। वह अपने घर, अपने वतन लौट रहा है। माँ को यह खुशखबरी दे दे... सोचते हुए उसने जेब से अपना मोबाइल निकाल लिया था।